अपना शहर अपने लोग

जिस तरह शहर में लोग समाए रहते हैं, उसी तरह लोगों में शहर समाया रहता है। अपनी आदतों और आचरणों के साथ।

स्वभावतः आसानी से लोग न शहर को बदलना चाहते हैं और न शहर लोगों को बदलना चाहता है। फिर भी लोग शहरों को बदलते चले जाते हैं और शहर लोगों को बदलता चला जाता है। संसार में इसी तरह बदलाव होता रहता है।

यह कहा जा सकता है कि हर शहर लोगों को अपनी तरह ढालता है और लोग भी शहर को अपनी तरह ढाल लेते हैं। हर शहर अपनी तरह जीवित रहना चाहता है और हर शहर के लोग अपनी तरह जीना चाहते हैं। किंतु जब इस प्रक्रिया में खलल पड़ता है तो अव्यवस्था उत्पन्न होने लगती है, जो बेचैनी पैदा करती है। इसी बेचैन अव्यवस्था की व्यवस्थित कथा इस उपन्यास में उतर आयी है।

लोग अपने शहर को मुट्ठी में कसकर पकड़े रहते हैं और वह न जाने कब मुट्ठी में से रेत की तरह झरकर छूट जाता है और एक दिन पराया हो जाता है। फिर वर्षों बाद लौटते हैं तो वही गलियाँ, सड़कें, चौराहे, मकान, दुकान सब अनजाने लगने लगते हैं। अपना घर भी स्वप्न में देखा हुआ प्रतीत होता है।

व्यक्ति न जाने कहाँ से जीवन यात्रा शुरू करता है और न जाने कहाँ-कहाँ भटक कर कहाँ समाप्त होता है? कोई नहीं जानता। शहर की क्या कहें, घर भी स्थायी नहीं रहा? पुरखों के बनाए घर में एक पीढ़ी भी नहीं रह पाती। व्यक्ति खुद एक शहर में अनेक घर बदल लेता है। नहीं भी बदले तो पुराने स्वरूप को ढहाकर नये रूप में ढाल लेता है।

कभी-कभी लगता है पुश्तैनी घर नहीं छूटा तो अच्छा हुआ। पुश्तैनी शहर नहीं छोड़ा तो अच्छा किया। परन्तु कभी-कभी लगता है कुछ भी अच्छा नहीं हुआ है। वही हुआ जो होना था। घर छूट जाने और शहर बदल जाने से स्मृतियाँ नहीं बदलती हैं। वे बार-बार कौंध कर आँखों के सामने आकर कलम में उतर आने को मचलने लगती हैं। बस इन्हें सहेज लेना ही सम्पत्ति है।

मध्यवर्गीय जीवन की अपनी चिंताएँ हैं और अपनी कुंठाएँ हैं। बल्कि सबसे ज्यादा चिंतित और कुंठित वर्ग भी यही है। मध्यवर्ग ने ही देश की तस्वीर को बदलने में सबसे अधिक भूमिका निभायी है। मध्यवर्ग में भी निम्न-मध्यवर्ग की बहुलता है।

निम्न-मध्यवर्गीय युवा वो है—

जो सपने देखता है पर कर्म नहीं कर पाता।

जो कर्म कर पाता है पर सपने नहीं देख पाता।

जो सपने देखता है और कर्म करता है पर सपने पूरे नहीं हो पाते।

क्यों? कुछ तत्त्व इस कथा में ढूँढ़े जा सकते हैं।

इसी युवा मन के कोने में यौवन का वह विराट संसार बिखरा रहता है जिसमें प्रेम और सौंदर्य की अवस्था को अभाव एवं बेरोजगारी मिलकर दबा देते हैं। इन्हीं दबे-कुचले, टूटे-फूटे, व्यर्थ-खुरदरे, डगमगाते कदमों के बीच संतुलन का साहस पैदा करके वह आगे बढ़ जाता है। यही युवा पीढ़ी उपन्यास की नायक है।

''जयपुर तमाशा'' उपन्यास कथा से मन का लेखन तृप्त नहीं हुआ तो ''जयपुर ताबीज़'' लिखने की प्यास जगी और कुछ 'रेत कण' बुहारकर बटोरे तो यह उपन्यास बन गया।

विषमताएँ किस तरह परत-दर-परत चढ़ती-बढ़ती चली जाती हैं और विकृतियों का विकास-प्रकाश कदम-दर-कदम कैसे फैलता-फूलता चला जाता है, यह इस उपन्यास के मूल में निहित है।

अफसोस हमारा शहर स्मार्ट हो गया, किंतु मन स्मार्ट नहीं हो पाया। वस्तुएँ स्मार्ट हो गयीं, किंतु व्यक्ति स्मार्ट नहीं हो पाया। कुछ-कुछ हो भी गया तो पूर्णरूपेण नहीं हो पाया। विसंगतियाँ यहीं से उत्पन्न होती चली गयी हैं, जो उपन्यास को व्यंग्य उपन्यास में बदलने की पुष्टि करती हैं।

पढ़कर प्रतिक्रिया के लिए आप स्वतंत्र हैं। सादर, सविनय आप सभी सुधी पाठकों को समर्पित।

—अजय अनुरागी

[1]

अचानक शहर स्मार्ट हो गया था तथा आधुनिक मनमानी पर उतर आया था। वह स्वयं से असंतुष्ट रहने लगा तथा लोगों को अराजक बनाने लगा। उसकी नजर में निष्ठा और विष्टा का भेद मिट गया था।

अँधेरा छँटा। भोर हुई। पेड़ों के ऊपर सोयी चिड़ियाओं ने अँगड़ाई ली और आँखें मलकर देखने लगीं कि टेलीफोन और बिजली के खम्भे हट चुके थे। उन पर टँगे तार गायब थे। जिन तारों के जाल में उलझकर सूरज की किरणें धरती पर उतरती थीं अब वे तार नहीं थे। किरणें सीधे धरती पर उतरने लगी थीं। रात्रि हुई तो चाँदनी तारों से छने बिना ही धरती पर नाचने लगी थी।

तारों पर बैठ कर रात गुजारने वाली चिड़ियाएँ, कबूतर, कमेड़ी भी बेघर होकर अन्यत्र चले गये थे। कुछ पेड़ आकाश में उड़ गए थे, कुछ को जमीन निगल गई थी।

चिड़ियों ने आज कलरव नहीं किया। संगीत रहित सुबह सन्नाटे के साथ शहर में उतरी। पेड़ों पर बची हुई चिड़ियाएँ मौन बनी रहीं। स्मार्ट होते शहर ने उनकी आवाज छीन ली थी। उनकी फुदकन भी शांत हो गई थी।

चौराहों पर से गुमटियाँ हटा दी थीं। बत्तियाँ लग गई थीं। लाल-हरी बत्तियों के इशारों पर ही यातायात चलने-रुकने लगा था।

शहर एक भीड़ बन गया था। दूर से कोई पहचान में नहीं आता था। पास पहुँचने पर भी पहचान धुँधली हो गई थी। पहचान की जरूरत भी नहीं रही थी। पहचान-पत्र जरूरी हो गया था।

सड़कों पर घिचपिच होने लगी थी। इन्सानों की घिचपिच। वाहनों की घिचपिच। पेड़ों को बचाने की कोशिश की थी, पर बच नहीं पाए थे। बचकर करते भी क्या? नये पेड़ लग नहीं सकते थे। मिट्टी बची नहीं। कंक्रीट, सीमेंट, पत्थरों के चौकों ने सड़क और

फुटपाथ को मिट्टी रहित कर दिया था। जमीन के नीचे बिजली, टेलीफोन, इन्टरनेट की केबिलें दबा दी गई थीं। पानी की नालियाँ, सीवर के नाले जमीन के भीतर बहने लगे थे। जमीन के ऊपर वाहनों की रेलपेल थी और भीड़ का भभ्भर था।

मित्र मुझे समझाने लगे थे, इतना भी निकम्मापन ठीक नहीं। व्यक्ति को कुछ-न-कुछ तो करना ही चाहिए। यद्यपि मित्र भी निकम्मेपन से थोड़ा ही ऊपर थे। परन्तु वे ऊपर थे इसलिए समझाने के अधिकारी थे। वे कहने लगे, ''कोई काम-धंधा नहीं हो सके तो चोरी, छीना-झपटी ही करो। ठालीपन से लूट-खसोट ही भली। खाली दिमाग शैतान का पीहर होता है। इसमें आत्महत्या जैसा अवसाद घेर लेता है। इसलिए कुछ करते रहो।''

मैं करने की संभावनाओं पर विचार किया करता था मगर कर कुछ नहीं पाता था। करने का आत्मविश्वास रीत गया था। विचार खूब करता था। कोरा विचार ही करता रह जाता था। मूर्त कुछ नहीं हो पाता था।

क्या किया जा सकता है? मिनी बस में कंडक्टरी, टैम्पों में ड्राइवरी, किसी दुकान पर सेल्समैनी, जोमेटो, स्वीगी में डिलीवरी ब्वॉय, सब्जी का ठेला लगाया जाए, या फलों की ढकेल लगायी जाए, पान-गुटखों का खोखा खोला जाए या किसी फैक्ट्री में मजदूरी की जाए, सिक्योरिटी गार्डगीरी करूँ या काल सेन्टर पर काम करूँ? अथवा चौखटी पर जाकर बेलदार बन जाऊँ?

हाथ का हुनर मेरे पास था नहीं। दिमाग की दाल गलती नहीं थी।

करने को बहुत कुछ था मगर मुझे कुछ न सूझता था।

आज घर में मेहमान आए हुए थे। छोटे भाई के विवाह की बातचीत करने के लिए। मेरा कुछ नहीं हो सकता था, यह मानकर छोटे के विवाह का काम निपटाने की कार्यवाही शुरू हो गयी थी।

मेरे कुछ न करने की जानकारी सबको हो चुकी थी। लोगों को यह विश्वास हो गया था कि भविष्य में भी मेरे द्वारा कभी कोई तीर नहीं मारा जा सकेगा, लिहाजा मेरे जैसे को तोरण मारने का मौका भी नहीं दिया जाना चाहिए। लोगों ने मेरे बारे में विवाह हेतु पूछताछ करना बन्द कर दिया था। मेरी माताजी से पिताजी ने साफ-साफ कह दिया था, जब कुछ करेगा ही नहीं तो कौन अपनी बेटी को कुएँ में धकेलेगा? इसलिए छोटों की चिंता करो। मझले भाई का विवाह हो गया था। छोटा अभी-अभी नौकरी लगा था इसलिए उसे देखने वाले आने लगे थे। आज भी बिधीपुर वाले आये थे।

मुझे आदेश दिया गया कि मेहमानों के लिए गरम-गरम नाश्ता लेकर आना है। मैं खुशी-खुशी घर से निकल पड़ा।

वैसे भी घर में कोई परिचित या मेहमान आया करता था तो मैं घर से बाहर हो जाया करता था। उनकी आँखों के सामने नहीं पड़ता था। यदि मैं उनकी आँखों के सामने आ जाता था तो पिताजी की आँखें नीची हो जाया करती थीं। वे मेरे बारे में पूछते थे और पिताजी जवाब देने में शर्म महसूस करते थे। मेरे पास उपलब्धियाँ थीं नहीं जो बखान किया जाता।

मैं देश के उन तमाम युवकों की तरह था जिन्होंने न तो अपना वर्तमान सँवारा और न जिनके पास भविष्य को सँवारने की कोई ठोस योजना ही थी। सपने जरूर थे लेकिन वे आकाश कुसुम की तरह थे। उड़ान थी, मगर पंख नहीं थे।

मुझे मेहमानों के लिए नाश्ता लाना था। यदि अच्छा नाश्ता ले जाऊँगा तो अच्छा परिणाम निकलेगा। छोटे भाई के हाथ पीले हो जाएँगे। माता-पिता जिम्मेदारी मुक्त हो जाएँगे। मेरी कोई बात नहीं थी। मेरा कुछ होना भी नहीं था। चलते-चलते मैं सोच रहा था।

कन्नू हलवाई की हींग कचौरी ली जाए या सौंधिया हलवाई के समोसे लिये चलूँ। या दानाराम की दाल पकौड़ी ठीक रहेगी। मिठाई में रबड़ी लेता चलूँ या रसमलाई ले लूँ। पिताजी या माताजी ने नाश्ते के बारे में कोई सूत्र दिये नहीं थे। इसलिए निर्णय मुझको ही करना था। मेहमान तीन थे। तीन-चार घर के सदस्य हो जाएँगे। एक-दो जनों के लिए ज्यादा हो जाए तो ठीक रहेगी। बीच में कोई परिचित आ गया तो उसे भी देना पड़ेगा। कुल दस समोसे और दस दोने रबड़ी लिये चलता हूँ।

बाजार में आया तो देखा कन्नू हलवाई और सौंधिया हलवाई की दुकानों पर कचौरी-समोसा की महक नहीं आ रही थी। ना ही कढ़ाई में सिकते हुए समोसे, कचौरी एवं मिर्ची बड़ा नजर आ रहे थे। दानाराम की दुकान भी वहाँ नहीं मिली। रबड़ी और रसमलाई वाला मिष्ठान भण्डार बंद पड़ा था।

पूछने पर पता चला कि शहर के स्मार्ट हो जाने से पारम्परिक खाद्य पदार्थ बंद हो गये हैं। उनकी जगह पिज्जा, बर्गर, चाऊमीन, चाईनीज चीजें चाहिए तो ले जाओ। एक मेरी ही तरह कुछ ढूँढने वाले खाली व्यक्ति से मिलकर मैंने भड़ास निकालना उचित समझा। सो मैंने कहा, भैये स्मार्ट सिटी क्या हो गया शहर, सब सत्यानाश नहीं हो गया? अभी शहर में कचौरी, समोसे खाने वाले जिन्दा हैं। जलेबी और इमरती के शौकीन बचे हुए हैं। ऐसे कैसे स्मार्ट हो गया शहर? स्मार्ट हो भी गया तो हो जाने दो, समोसे, कचौरी

तो बनने दो। दो-चार छत्ते जलेबी के मुँह में उतरते नहीं है तब तक गला तर ही नहीं होता है। हम तो जलेबी पर रबड़ी डालकर खाने वाले हैं। मतलब मीठे पर भी मीठा। मीठे पर भी मीठा जब तक नहीं चढ़ता है तब तक मिठास का मजा ही नहीं आता। मीठी खीर में भी ऊपर से बूरा डालकर खाने वालों का क्या होगा? चॉकलेट और आईसक्रीम से कोई पेट भरता है भला? मीठे घेवर पर भी रबड़ी की पर्त न चढ़े तो क्या घेवर? हमारे यहाँ तो मिठाई भोजन के आगे-पीछे खाई जाती है। खाने से पहले भरपेट मिठाई खींच ली, फिर खाना खाया भरपेट और अन्त में ठूँस-ठूँसकर फिर मिठाई चढ़ा ली। तब एक दावत का पूरा आनन्द मिलता है। भरा हुआ पेट भी तीन बार भरा जाता है। मिठाई के बिना क्या स्मार्ट शहर?

फोड़ते रहो कूलड़ी में गुड़। स्मार्ट-स्मार्ट गाते फिरो, नाचते फिरो। चटनी-समोसे बिना सब बेकार है। कढ़ी-कचौरी बिना सब फीका है।

एक पान खाने का शौकीन लाल-लाल होंठों के बीच गुटखा दबाए बोला, मुझे सुबह से पान की दुकान नहीं मिल रही है। खोखों पर केवल गुटखा, सुपारी मिल रहे हैं। पान रखना ही छोड़ दिया। मैं सुबह से भटक रहा हूँ। ये शहर किससे पूछकर स्मार्ट बना दिया है? बना दिया है तो मूल चीजें गायब क्यों कर दी हैं? मूल भी रखो और फिजूल भी रखो। सबके लिए हो स्मार्ट सिटी?

जिम्मेदारों से पूछना चाहिए यह सवाल। क्यों हमें अपने ही शहर में अपने ही स्वाद से वंचित कर दिया गया है?

हम स्मार्ट सिटी के विरोध में आंदोलन करेंगे।

मैंने कहा, भैये, मुझे समोसे, कचौरी नहीं मिल रहे हैं, मेहमान घर में बैठे इन्तजार कर रहे हैं। क्या करूँ?

उसने कहा, बेकरी की चीजें ले जाओ और रिश्तेदारों की आवभगत करो। समोसे चटनी के चक्कर में वो भूखे बैठे रहेंगे। रिश्ता और टूट जाएगा।

बतौर नाश्ता मैं स्मार्ट चीजें लेकर गया। रिश्तेदार हमारे नाश्ते का स्मार्ट स्तर देखकर दंग रह गए। पिताजी थोड़े नाराज हुए तो मैंने स्मार्ट सिटी बनने के विकास का ग्राफ उन्हें समझा दिया। नाश्ते से उन्होंने हमारी स्मार्टनेस को भाँप लिया। लेकिन चंदू को देखकर ढीले पड़ गए। लड़की वालों ने कहा, ऐसे स्मार्ट शहर में हम बेटी का रिश्ता नहीं कर सकते। यहाँ सम्बन्ध भी स्मार्ट हो जाएँगे तो हमारी बेटी का क्या होगा? यह कहकर उन्होंने संबंध को यहीं स्थगित करना चाहा और उठकर चल दिये। चंदू का दोष तो सीधे-सीधे वे बता नहीं सकते थे।

शहर के अचानक स्मार्ट हो जाने से कई तरह की समस्याएँ पैदा हो गयी थीं। सीधे रास्तों को टेढ़ा कर दिया था। जिस सड़क से जा सकते थे उस सड़क से आ नहीं सकते थे। एक तरफा यातायात (वन वे ट्रेफिक) लागू हो गया था।

पुराने शहर में जिस रास्ते से व्यक्ति जाता था उसी रास्ते से वापस लौट आता था। स्मार्ट सिटी में जिस रास्ते से जाता था उस रास्ते से आना संभव नहीं था। उसे नया रास्ता खोजना पड़ता था। मतलब आने-जाने में भी सैद्धान्तिक अंतर आ गया था।

घाट-घाट का पानी पीने वाला ही सड़क-सड़क पर चलने में सफल होता था।

स्मार्ट होने के बाद शहर में घाट-घाट पर पानी मिलना बंद हो गया था। प्याऊ लगाने वालों ने मटके हटा लिये थे। पानी पिलाना बंद हो गया। खुद अपना पानी खरीदो और बोतल भरकर पीओ। कुएँ सूख गए थे। हैण्डपम्प रीत गए थे। मटके बोतल में बदल गये थे। आँखों में भी दो बूँद पानी नहीं बचा था।

पानी बिकने लगा था। पानी जैसी वस्तु को सेवा क्षेत्र से बाहर कर दिया था। जो चीज बिकने लगती है वह सेवा से परे हो जाती है। अब हर घाट पर एक ही तरह का पानी मिलने लगा था।

बुजुर्गों ने हमें सिखाया था जिस रास्ते से जाओ उसी रास्ते से चुपचाप लौट आओ। सुखी रहोगे। अन्यथा भटक जाओगे। एक रास्ते पर चलते रहो। जगह-जगह चलोगे तो मुसीबत हो जाएगी। स्मार्ट सिटी में अब उसी रास्ते से लौटने पर दु:ख प्राप्त होता था। चालान काट दिया जाता था। पुलिस डंडे मारती थी। कहती थी रास्ता बदलो भले ही भटक जाओ। एक राह छोड़ो अनेक राहों का संधान करो।

छोटा भाई चंदू रेलवे में लग गया था इसलिए उसके रिश्ते वाले बहुतायत में आने लगे थे। उनको पता था रेलवे में पत्नी, बच्चों को मुफ्त में यात्रा सुख अलग से मिलेगा। किराये की बचत भी बड़ी बचत होती है। दो-एक बार रिश्तेदार भी बेटिकट हाथ मार लिया करेंगे। सरकारी नौकरी वाले से शादी होगी तो सीना चौड़ा हो जाएगा।

बीच वाला भाई नगर विकास प्राधिकरण में नौकरी करता था। नौकरी तो नीची थी लेकिन कमाई ऊँची थी। रिश्ते वाले नौकरी से ज्यादा कमाई पर नजर रखकर बात किया करते थे इसलिए उसके लिए ऊँची पार्टियाँ आने लगीं। हमारी हैसियत से भी ऊँचे रिश्ते आये और अन्त में ऊँची जगह शादी हो गयी।

चंदू की नौकरी अच्छी थी किन्तु सेहत अच्छी नहीं थी। इस कारण मांगलिक अवरोध बना हुआ था। उसे देखने तो खूब आते थे लेकिन दुबारा बात पक्की करने कोई नहीं आता था। वह कुछ ज्यादा ही कमजोर था। हाथ अगरबत्ती और पैर मोमबत्ती

जैसे थे। मैंने उससे कसरत करने को कहा जो अम्मा (दादी) ने मना कर दिया। ''कैसी बात कर रहा है। कसरत करा के क्यों हाथ-पैर तुड़वाना चाहता है? इसे घी-दूध खिला-पिलाकर मोटा करने की सोचो।''

मैंने कहा, ''अम्मा इसे दूध से उलटियाँ आती हैं। घी पचता नहीं है। बताओ क्या करें? मैगी खा-खाकर मैगी जैसा हो गया है। चिप्स और कुरकुरे खाता है। चना-चिरबों के तो हाथ ही नहीं लगाता। ऊपर से कोल्ड ड्रिंक और पीता है।''

''तेरी माँ की गलती है। उसने बचपन से खिलाने-पिलाने पर ध्यान नहीं दिया है। मैगी भी कोई खाने की चीज है। चना, सत्तू, गुड़धानी, मुरमुरा, बादाम, काजू खाता तो आज ये दिन देखने न पड़ते। अच्छी नौकरी होते हुए भी शादी के लाले पड़ गए हैं। वरना नौकरी वाले छोरे पर लड़की वाले टूट-टूटकर पड़ते हैं।''

''अम्मा, ये चंदू डबल रोटी खा-खाकर सिंगल बॉडी हो गया है। मैं तो कहता हूँ व्यक्ति काम में भले पीछे रह जाए किन्तु खाने में सबसे आगे होना चाहिए।''

गुस्से में अम्मा ने हाथ मटकाकर कहा, ''तो तू कौनसा भला है? तेरे निकम्मेपन से पूरे खानदान का नाम डूब रहा है। ऐसा खाना भी किस काम का कि हाथ-पैर ही न हिलें।''

मैंने कहा, ''अम्मा, हाथ-पैर नहीं हिलाने में इतनी बदनामी नहीं होती, जितनी हाथ पैर हिलाते हुए चंदू की हो रही है।''

अम्मा तैश में आ गई। ''तो तू कौन-सा नाम कमा रहा है। पूरी बिरादरी में पता है बंसी का बड़ा छोरा निकम्मा है। इसलिए ब्याह वालों ने छेक दिया है। अब कोई तेरे दाँत भी नहीं देखने आता। चंदू को नौकरी के कारण ही सही, देखने तो आते हैं लोग।''

कहते हैं मूर्ख अड़ जाता है। मैं अड़ गया। ''देखने वालों के आने से क्या होता है अम्मा? मुझे भी खूब देख गये?''

अम्मा सामाजिक क्रोध में आ गई, ''इज्जत वालों के ही कोई जाता है। तेरे बाबा ने खानदान की इज्जत बना रखी है, वही काम आ रही है।''

''अम्मा, अब कहाँ गई इज्जत?'' मैंने व्यंग्य मारा। अम्मा तिलमिला गई।

हाथ नचाकर बोली, ''इज्जत तो बनाने से बनती है। तेरे बाप ने बनाई और अब तू बनाए रखेगा तो बनेगी अन्यथा मिट्टी में मिल जाएगी। अब तक तो पुरानी इज्जत काम आ रही थी। सब कुछ दबा-ढका हुआ था। अब निकम्मेपन से उघड़ जाएगी तो कोई नहीं पूछेगा।''

कहकर अम्मा थोड़ी देर चुप रही। फिर उखड़ गयी, ''तू अगर मुँहबद्दी करेगा तो मैं नहीं रहूँगी यहाँ। आज ही तेरे बाप से कह दूँगी मुझे गाँव छोड़ आए। तुम्हारी माँ तुम्हें संस्कार सिखाती तो आज इज्जत चौगुनी हो जाती।''

माँ का नाम अम्मा ने बीच में सास-बहू की पुरानी खुन्नस को निकालते हुए लिया था।

अम्मा की बात पर माँ चिरमिरा गई। ''सारे संस्कार माँ ही सिखाएगी या कुछ पिता भी सिखाएगा? संतान केवल माँ ही नहीं जनती है। कभी बाप के सिर पर भी ठीकरा फोड़ा करो। जो बुरा किया सो मैंने किया और जो अच्छा किया वह बाप ने किया। वाह अम्मा वाह!''

अम्मा को तिल का ताड़ बनाना आता था। बोली, ''तूने चंदू की देखभाल ढंग से करी होती तो आज उसकी सेहत के कारण शर्मिन्दा तो नहीं होना पड़ता। छोरे की इतनी अच्छी नौकरी लगने पर भी बिरादरी के आदमी के पैर जम नहीं रहे हैं। लौटकर बात पक्की करने कोई नहीं आता। समाज में कितनी बदनामी हो रही है।''

''चंदू शुरू से था ही ऐसा। अपने बाप जैसा धड़ है उसका। कितना ही खिलाओ शरीर में लगता ही नहीं है। अम्मा तुम मुझ पर तो इल्जाम लगा रही हो अपने बेटे की नहीं कहती हो। शादी पर वो कैसे तीस मार खाँ थे? तुमने क्या खिलाया था जो सींकिया पहलवान लगते थे? मैंने ही सर्दियों में गोंद-घी-मेवे के लड्डू खिला-खिलाकर इतना तो कर दिया कि देखने में बुरे नहीं लगते। शादी के समय की तस्वीर देख लो बाँस जैसी काया लगती थी। पता नहीं मेरे बाप ने क्या देखकर बात पक्की कर दी थी।''

अम्मा ने खिसियाकर कहा, ''रहने दे। झूठ मत बोल। बंसी इतना कमजोर नहीं था। ब्याह के समय दुबला-पतला जरूर था पर सुहाता शरीर था।''

माँ ने कहा, ''अम्मा रहने दो। अभी ब्लैक एण्ड व्हाइट फोटो एलबम में पड़े हैं। तब और अब में जमीन-असमान का फर्क है। पता नहीं आपने कौन-से लड्डू इन्हें खिलाकर पहलवान किया था? लड्डू जैसे लगते तो नहीं थे।''

इसी बीच चंदू एलबम उठा लाया। पिता के बचपन वाले फोटो देखकर हैरानी होती थी। शादी के फोटो में भी पिताजी मरियल जैसे ही लगते थे लेकिन अम्मा इस बात को मानने को तैयार नहीं थी। वह कहने लगी, ''देख तो सरी, बंसी का कैसा सुता हुआ शरीर है फोटो में। तब यह कुश्ती लड़ा करता था।''

मैंने कहा, ''अम्मा, इन फोटोज को देखकर तो नहीं लगता पिताजी कुश्ती, पहलवानी करते होंगे। आज तो देखकर कह भी सकती हो।''

''तू रहने दिया कर मुरली। अपनी माँ की तरफदारी कर रहा है।'' चंदू को फोटो दिखाकर पूछती है, ''तू बता चंदू तेरे बाप में कोई कमी थी क्या?''

चंदू बोला, ''कमी तो नहीं थी अम्मा, मगर शादी के समय पिताजी की स्थिति भी आज की मेरी जैसी ही थी। थोड़ी बहुत उन्नीस-बीस जरूर हो सकती है। उनका तब का फोटो आज के मेरे फोटो से एकदम मिलता-जुलता है।''

मैंने कहा, ''लो हो गया फैसला। मेरी बात की पुष्टि हो गयी। चंदू के अलावा और किसी से भी पूछकर देख लो अम्मा।''

अम्मा अपनी बात के आगे किसी की लगने नहीं दे रही थी। यह अम्मा की विशेषता थी।

पिताजी लड़की वालों को बाहर तक छोड़कर आ गए थे। आते ही सब चुपचाप हो गए। चंदू एक तरफ खिसक गया। मैं बरामदे में बाहर चला गया। अम्मा ने पिताजी से पूछा, ''क्या हुआ? कुछ कहकर गये क्या?''

पिताजी ने हताश स्वर में कहा, ''कोई स्पष्ट जवाब नहीं दिया। असमंजस में थे वे। बोल रहे थे घर में भाई-बन्धुओं से सलाह करके बताएँगे।''

अम्मा ने कहा, ''भाई-बंधु ब्याह थोड़े ही करेंगे। ब्याह तो बाप ही करेगा। वैसे भी आजकल परिवार की मानता ही कौन है? सारी बात तय हो जाती है तब भी परिवारवालों को भनक नहीं लगने देते। एन वक्त पर सूचना देते हैं। यह तो टालने वाली बात है। वरना कुछ तो आश्वासन देकर जाते ही।''

बेमन से पिताजी बोले, ''सीधे-सीधे मना करना अच्छा नहीं रहता इसलिए बाद में जवाब देंगे का बहाना बनाते हैं सब। वरना लड़की के बाप, भाई साथ में थे तो निर्णय यहीं कर जाते।''

अम्मा ने कहा, ''करनी नहीं है उनको। कोई और आएगा। पाँच-सात दिन बाद फोन करके थाह जरूर ले लेना। क्या पता मानस बन जाए।''

''मुन्ना मामाजी के साले के साढू से पूछूँगा। उनकी रिश्तेदारी में थे ये।'' कुर्सी पर बैठते हुए पिताजी बोले।

''इमलिया गाँव का है मुन्ना के साले का साढू।'' अम्मा ने स्मृति को कुरेद कर कहा।

''हाँ, वही है।'' अपनी याददाश्त दुरुस्त करके पिताजी ने कहा।

''तो फोन मिला ले मुन्ना को और बता दे आज का घटनाक्रम। वो कोई रास्ता निकाल लेगा। अपने साले के साढ़ू से पूछकर मुन्ना तरी-भाव ले लेगा।''

पिताजी मुन्ना मामाजी को फोन मिलाने लगे।

उधर अतिथियों के लिए आया बचा नाश्ता प्लेटों में इकट्ठा किया तथा चंदू खाने बैठ गया। बोला, ''भैया नाश्ता जोरदार लाए इस बार। मजा आ गया।''

मैंने कहा, ''मेहमानों को तो मजा आया ही नहीं। उन्हें तो वही समोसे-कचौरी पसन्द थे।''

चंदू बोला, ''फिर भी चट कर गए। बर्गर तो पूरे खींच गए ससुरे। पिज्जा उनसे चबा नहीं इसलिए छोड़ गए। इतना भारी नाश्ता लाने की जरूरत क्या थी भैया? पूरा चाइनीज फूड ले आए और मिठाई की जगह चॉकलेट, वाह! मजा आ गया।''

''क्या करता? शहर स्मार्ट हो जाने से नाश्ता भी स्मार्ट हो गया है। अब थोड़ा पिज्जा और चॉकलेट अम्मा को दे आ।'' बुजुर्ग सम्मान की दृष्टि से मैंने कहा।

''बुढ़ापे में अम्मा क्या करेगी खाकर?'' उँगलियाँ चाटते हुए चंदू बोला।

''देकर तो देख, अम्मा मना नहीं करेगी।'' मैंने प्लेट में रखते हुए कहा। मना करते-करते अम्मा ने नाश्ता ले लिया। पिताजी फोन में व्यस्त हो गए।

× × ×

मैं घर से बाहर निकलकर सड़क पर आ गया। पान के खोखों में पान की जगह गुटखा, पान मसाला पाऊचों की भरमार हो गयी थी। पाऊचों की लड़ियाँ दुकानों पर लटकी रहती थी। महँगाई के चलते पान खाने वाले कम हो गए थे और गुटखा खाने वाले बढ़ गए थे। सस्ता होने के कारण गुटखा सुलभ भी था।

शहर के चौराहों, तिराहों की सड़कें जर्दा-गुटखे की पीकों से लाल, कत्थई हो गई थीं। लगता था थूकने और पीकने वालों ने सड़क पर जैसे पेन्ट पोत दिया हो। पीक-पीक में भी अन्तर होता था। पान की पीक गहरी लाल होती थी। गुटखा, जर्दा की पीक कत्थई, पीली होती थी। दोनों से मुख और जबड़ों की रंगत भी अलग-अलग हो जाती थी।

पान खाने वाले का गाल फूला रहता था। गुटखा दबाने वालों के जबड़े और होंठों के नीचे का भाग फूला-फूला रहता था। पान किसी-किसी चौराहे पर मिला करता था। गुटखा गली-गली मिल जाया करता था।

सड़क के किनारे पर दो साँड सिर भिड़ाए जोर आजमाइश कर रहे थे। कभी काला वाला सफेद वाले को फीट-दो-फीट धकेल देता था। कभी सफेद वाला काले वाले को पीछे सरका देता था। दोनों अड़े हुए थे। कोई कम न पड़ता था।

आस-पास वाले व्यापारियों ने दुकान के बाहर रखा सामान उठा-उठाकर भीतर रख लिया। ये दोनों साँड जब लड़ते थे तो घण्टों लड़ते रहते थे और जब एक साँड दूसरे को ठेलता हुआ रौंदता था तो जो चपेट में आ जाता था वह धराशायी हो जाता था। कचूमर भी निकल जाता था। सामान चकनाचूर हो जाता था।

कुछ दुकानदारों ने शटर गिरा दिये थे। कई बार इनकी लड़ाई दुकानों को भारी पड़ जाती थी। ये साँड एक-दूसरे को रौंदते हुए दुकान में घुस जाते थे। काउण्टर, शो केस, कुर्सियाँ, सामान सबका भुर्ता बन जाता था। लाखों का नुकसान हो जाता। एक बार तो साँड शटर से ऐसा टकराया कि शटर टूटकर नीचे आ गिरा।

दर्शकों का ताँता लग गया। गाड़ियों का आवागमन बंद कर दिया। समाजसेवी दुकानदारों ने सड़क के दोनों ओर वाहन रुकवा दिये थे। साँड तो साँड थे। ये लड़ाई में कुछ भी नहीं देखते-सोचते थे। सदर बाजार में एक-दो बार लड़ते हुए साँडों ने गाड़ियाँ तोड़ डाली थीं। यदि साँड एक पल इस पार लड़ रहे हैं तो दूसरे ही पल पैंतरा बदल कर दूसरी पार खिंचे चले जाते थे। इनकी लड़ाई के पैंतरों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। पल भर में ही दिशा और दशा दोनों ही बदल डालते थे।

कुछ दुकानदार दुकानों के आगे तिरपाल के लिए लगाये गये बाँस निकालकर साँडों को हटाना चाह रहे थे। वे सड़क पर दूर से ही चिल्लाते हुए बाँसों को फटकारते किन्तु साँडों पर इसका कोई असर न होता था। कुछ ने पानी भर-भरकर जग और बाल्टियाँ साँडों पर फेंकी किन्तु वे टस से मस न हुए।

दर्शकों में आधे काले साँड की तरफ हो गए थे और आधे सफेद साँड की तरफ। दोनों अपने-अपने साँडों को विजयी देखना चाहते थे इसलिए उनमें हल्ला करते हुए जोश बढ़ा रहे थे।

पलभर में ही साँडों ने पैंतरा बदला। सफेद साँड सरकता हुआ तिराहे पर आ गया। वहाँ दोनों के बीच गुत्थम गुत्था होने लगी। ट्रेफिक रुक गया। हरी बत्ती तीनों तरफ के लिए होती रही लेकिन कोई निकलने को ही तैयार नहीं था। तिराहे पर साक्षात् जैसे काल और महाकाल की भिडंत हो रही थी। पुलिस आ गयी। सीटियाँ बजाकर लोगों का आवागमन रोक दिया। नगर निगम का दस्ता आ गया लेकिन लड़ाई को कौन छुड़ाए? हताहतों के लिए एम्बुलेंस बुलवा ली थी। किसी ने कहा, यह स्मार्ट सिटी के साँड हैं। इनकी स्वायतत्ता पर कोई रोक नहीं है।

काफी देर बाद दमकल आयी। पानी की बौछार उन पर डाली गयी। तब दोनों साँड अलग होकर विपरीत दिशाओं में भाग गए। मैं घर की तरफ चल दिया।

× × ×

तिराहे की गली में चाट भण्डार के तीन-चार ठेले लगा करते थे। मथुरा चाट भण्डार के ठेले के पास सुमेर सिंह अपनी पत्नी सावित्री के साथ मिल गया। दोनों गोल गप्पे गटक रहे थे। मुझे देखकर उसकी पत्नी सकुचा गई। सुमेर सिंह ने सहृदयता से कहा, ''आप भी खा लो भाई साहब।''

मैंने कहा, ''तुम खाओ।'' कहकर मैं गली में आगे बढ़ गया।

सुमेर सिंह पीछे-पीछे मेरे पास आया, ''आपसे काम था भाई साहब।''

''मुझसे क्या काम है सुमेर?'' आश्चर्य से मैंने पूछा। क्योंकि मुझसे कभी किसी का काम पड़ता ही नहीं था। वैसे भी मैं किसी के काम का था भी नहीं। पहली बार सुमेर ने मुझे किसी लायक समझा था। मैं उसको धन्यवाद देना चाहता था। मगर वह विनम्र होकर बोला, ''इस बार मैं अध्यापक भर्ती परीक्षा में बैठ रहा हूँ, कोई व्यवस्था करा दो ताकि पास हो सकूँ।''

मैंने कहा, ''सुमेर, कोई व्यवस्था होती तो मैं खुद ही नौकरी लग जाता।''

वह कहने लगा, ''मुझे पता है आपके पास कोई न कोई जुगाड़ है जरूर। आपने अपने दोनों छोटे भाइयों की नौकरी लगवा दी है। मेरे लिए भी कुछ न कुछ करा दो तो आपका अहसान मानूँगा।''

''दोनों भाइयों की नौकरी तो उनकी काबिलियत से लगी है। इसमें मेरा कोई योगदान नहीं है। यदि कोई जुगाड़ मेरे पास होता तो जरूर बता देता।''

वह बोला, ''मैं जानता हूँ आपकी जान-पहचान ऊपर तक है।''

''ये गलत-फहमी है तेरी। किसी ने गलत कह दिया है। मेरे संबंध तो नीचे वालों से ही कभी नहीं रहे। और तो और घर वालों से ही मेरे संबंध ठीक नहीं हैं। बाहर वालों से क्या होंगे?''

वह अड़ गया। ''आप झूठ बोल रहे हैं भाई साहब। मेरे लिए तो आपको करना ही पड़ेगा। घर वालों ने शादी भी कर दी, नौकरी लगी नहीं। जिम्मेदारियाँ और सिर पर हैं।''

मैंने कहा, ''अभी तो तू पत्नी को लेकर घर जा। शाम को मिलना। जो मदद हो सकेगी, जरूर करूँगा।''

आश्वस्त होकर वह चला गया। मेरे मन में अनेक प्रश्न जगा गया। 'क्या मैं किसी के लिए उपयोगी हो सकता हूँ? क्या मैं किसी के लिए कुछ कर सकता हूँ? क्या मुझे कुछ करना चाहिए?'

सुमेरसिंह ने मेरे भीतर उम्मीद की किरण जगा दी। पहली बार मेरा मन घर जाने को लालायित हुआ। मैं लौटकर घर आ गया। बाहर खड़े नीम के पेड़ पर चिड़ियों की चहचाहट शुरू हो गयी थी। शाम का कलरव सुखमय प्रतीत हुआ। यह पेड़ मैंने बचा लिया था। घर के बाहर सड़क पर था। पक्की सड़क बनी तो इसे ट्री गार्ड लगाकर रोक लिया था। सड़क बनाने वालों से कहासुनी हुई थी। फिर पड़ोसियों के यहाँ पतझड़ में पत्ते उड़-उड़कर जाते तो लड़ाई होती। वे पेड़ को कटवाना चाहते थे।

पिताजी भी इस झगड़े की जड़ को हटवा देने के पक्ष में थे। मैं पेड़ के पक्ष में था। घर में मेरा इस पेड़ के अलावा कोई पक्षधर था ही नहीं।

पेड़ मुझे प्रिय था। माँ पेड़ का कचरा बुहारते-बुहारते परेशान हो जाती थी। चंदू का कहना था, स्मार्ट सिटी में पेड़ों का क्या काम?

आज मुझे जल्दी घर लौटते हुए देखकर चंदू ने आश्चर्य से पूछा, ''आज क्या हुआ, शहर बंद है या कर्फ्यू लग गया है। जो भैया इतनी जल्दी घर आ गए?''

मैंने उसे डपटकर कहा, ''चुप रह। बकवास मत कर। जल्दी आने में आश्चर्य कैसा? मेरा घर कभी भी आऊँ, कभी भी जाऊँ।''

चंदू बोला, ''वाह भैया, क्या बात है? मान गये आपको। आज जरूर कोई-न-कोई विशेष कारण है। वरना आप रात नौ-दस बजे से पहले लौटते ही न थे।''

मैं उसकी अनसुनी करके नीम के पेड़ के नीचे चला गया। चिड़ियों की फुदकन और कलरव साथ-साथ चल रहे थे। वे फुदक-फुदक कर गा रही थीं। वे गा-गाकर फुदक रही थीं। पेड़ की शाख-शाख पर चिड़ियों की फुदकन का कम्पन स्पष्ट नजर आ रहा था। पेड़ का पत्ता-पत्ता पुलकित होकर हिल रहा था। वे एक जगह टिककर नहीं गाती थीं। बल्कि एक-दूसरे के पास फुर्र हो-होकर गा रही थीं। सामूहिक चिड़िया-गान गली में दूर तक सुनायी पड़ता था।

प्रतिदिन सुबह और शाम यह कलरव लगभग आधा घण्टा चलता था। पेड़ पर पूरे दिन चिड़ियों की चहक बनी रहती थी। पूरा घर पुलकता-चहकता रहता था चिड़ियों के कारण।

चिड़ियों को देखकर लगा ये कितने उत्साह और विश्वास से भरी हुई हैं। कितनी निर्भीक होकर गा रही हैं। इन्हें शहर के न स्मार्ट हो जाने की चिंता है और न हेरीटेज बन

जाने की खुशी है। इनकी खुशी नीम के पेड़ में है और शायद पेड़ भी खुश था कि उसके ऊपर इतनी चिड़ियों का बसेरा है।

अचानक तीन-चार चिड़ियाएँ नीम से उड़कर बाउण्ड्री पर आईं और उनके कंठ से कलरव की जगह रौरव निकलने लगा। खतरे की भाषा अलग होती है। इस बीच चिड़ियों ने भी भयगान शुरू किया और कुछ ही पल में तमाम चिड़ियों के कंठ रुक गये। उनके गले से बहती हुई सुर सरिता मौन हो गई। एक सजग ध्वनि कुछ कंठों से निकलकर सबको सचेत करने लगी।

दरअसल पेड़ के नीचे बिल्ली आ गई थी। बिल्ली को देखकर ही चिड़ियों में भय व्याप्त हो गया था। शत्रु को सामने देखकर चिड़ियाएँ अपनी सुरक्षा में लग गईं। पेड़ यह देखकर सिहर उठा। बिल्ली घात लगाकर चिड़ियों का शिकार कर लेती थी। रात में भी पेड़ पर सोती हुई चिड़ियों को यह दबोच लेती थी। पेड़ कुछ नहीं कर पाता था।

मैंने बिल्ली को ताली बजाकर भगा दिया लेकिन चिड़ियों के भीतर व्याप्त डर को निकाल नहीं पाया। उनके कंठों में दबे संगीतमय स्वर वापस नहीं लौटे। बिल्ली चली गई। मगर बिल्ली का भय नहीं गया। एक झलक दिखलाकर डर रवाना हो गया, मगर घबराहट वातावरण में अभी भी फैली हुई थी।

एक गिरगिट पेड़ के तने से उतरकर दीवार की ओर बढ़ने लगा। वह दीवार पर चढना चाहता था। गिलहरी किट्-किट् करके दीवार से उतर कर नीम के पेड़ पर चढ़ गई।

चिड़ियों के साथ-साथ मेरा मन भी उदास हो गया। महीनों बाद मैंने घर में संध्या को उतरते देखा था। यह क्या जीवन है कि प्रसन्नता एक ही पल में उदासी में बदल गई थी।

मैं सोच में पड़ गया। चिड़ियों का कलरव बचाऊँ या बिल्ली की भूख को बचाऊँ? बिल्ली की भूख शांत की जाएगी तो पेड़ पर चिड़ियों का कलरव मौन हो जाएगा। चिड़ियों का कलरव बचाया जाएगा तो बिल्ली की भूख मौन हो जाएगी। प्रकृति के लिए दोनों जरूरी हैं। शहर के लिए कुछ भी जरूरी नहीं था। न बिल्ली, न चिड़िया।

चिड़ियों ने शहर को बचा रखा था। शहर ने बिल्लियों को बचा रखा था। एक गाय द्वार-द्वार पर झाँकती हुई, ठहरती हुई आई और नीम के पेड़ से गर्दन और पीठ रगड़ने लगी। शरीर खुजलाने के बाद गाय हमारे द्वार पर आकर खड़ी हो गई। टकटकी लगाए द्वार पर थोड़ी देर खड़ी रही। फिर आगे बढ़ गयी क्योंकि एक कुत्ता उसके पास आकर खड़ा हो गया था। कुत्ता नीम की जड़ के पास लेट गया। वातावरण में थोड़ी देर पहले बना

बिल्ली का डर खत्म हो गया था। चिड़ियों ने चैन की साँस ली। शाम के बाद अँधेरा होते ही चिड़ियाएँ पेड़ में खो गयी थीं। पेड़ हलचल रहित साँस रोके समाधिस्थ हो गया था।

× × ×

अपने वादे के मुताबिक शाम को सुमेरसिंह मुझसे मिलने चला आया। मैंने पूछा, ''सुमेर सिंह मैं तेरी क्या मदद कर सकता हूँ?''

उसने खुलकर बताया, ''आजकल प्रतियोगी परीक्षाओं के पेपर लगातार आऊट हो रहे हैं। आपकी कोचिंग वालों से अच्छी जान-पहचान है। अबकी बार अध्यापक भर्ती का पेपर मिल जाए तो बेड़ा पार हो जाएगा। इसमें जो सेवा प्रसादी या दान-दक्षिणा लगे वो मैं देने के लिए तैयार हूँ।''

मैंने समझाया, ''मैं दान-दक्षिणा वाला काम नहीं किया करता हूँ। फिर भी मैं कोचिंग वाले मित्रों से तुझे मिलवा दूँगा। तेरा काम आसान हो जाएगा।''

प्रतियोगी परीक्षाओं में पेपर आऊट होने का सिलसिला आम हो गया था। नकल कराने वाले गिरोह बन गये थे। लाखों-करोड़ों में पेपर बिकने लगे थे। परीक्षा से एक दिन पूर्व मैरिज गार्डन में नकल की पूर्व तैयारी कर ली जाती। बस में लाकर पेपर हल कराया जाता। इसके बाद भी कोई बालों में ब्लू टुथ लगाकर लाता तो कोई चप्पल में चिप लगाकर परीक्षा कक्ष में बैठता था। ब्लूटुथ लगी बनियानें भी खूब चलीं। नकल के हाईटैक तरीकों से सफलता की गारंटी बढ़ गयी थी।

नकल के करिश्मों ने अक्ल के परिश्रम को व्यर्थ सिद्ध कर दिया था। परीक्षा हो जाने के बाद पता चलता था कि यह पेपर तो आऊट था। परीक्षार्थी ठगे से रह जाते थे। उनमें यह विश्वास बैठ गया कि हर पेपर आऊट होकर ही परीक्षा कक्ष तक पहुँचता है। तथा पैसे देकर पेपर खरीदा जा सकता है।

पेपर आऊट कराना उद्योग बन गया था। कुछ परीक्षार्थी इस उद्योग का लाभ उठाने में पढऩा छोड़ देते थे। कुछ प्रतियोगी परीक्षा के कोचिंग सेन्टर अधिक से अधिक विद्यार्थियों को सफल बनाने की होड़ाहोड़ी में पेपर खरीदा करते थे। जिससे उनका नाम होता था तथा अगले साल विद्यार्थियों की संख्या बढ़ जाती थी। मोटी कमाई तो मुख्य ध्येय था ही।

मेरे दो-तीन सहपाठी किसी प्रतियोगी परीक्षा में सफल नहीं हुए तो उन्होंने दूसरों को सफल करने का बीड़ा उठाया तथा कोचिंग केन्द्र खोल लिये। इसमें वे सफल हो गए। सफलता उनके चरण चूमने उनके कोचिंग तक पहुँच गयी। इससे उनकी यश और धन वृद्धि होने लगी।

मैंने सुमेरसिंह को अपनी गारंटी पर कोचिंग मित्रों से मिलवा दिया। उन्होंने उसे गारंटी कार्ड दे दिया। गारंटी कार्ड जेब में रखकर सुमेरसिंह घूमने लगा। मैंने उसे तैयारी करने की सलाह दी। कभी गारंटी कार्ड नहीं चले तो तैयारी कार्ड चल जाएगा। उसका विश्वास गारंटी कार्ड में जम गया था। विज्ञप्ति निकली। प्रतियोगी परीक्षा का फार्म भरने के बाद सुमेर सिंह ने एक कोचिंग सेन्टर में प्रवेश ले लिया। उसके दिमाग में एक ही बात थी, परीक्षा पूर्व प्रश्न-पत्र हथियाना और सफलता प्राप्त करना।

उसे परीक्षा से एक दिन पूर्व वांछित दान-दक्षिणा देने के बाद पेपर मिल गया था। पाँच लाख में मिला तो उसने दस लाख कमाने के लिए दूसरों को बेच दिया। पेपर आगे से आगे बिकता रहा। प्रशासन ने आऊट पेपर को आऊट माना नहीं। हूबहू पेपर परीक्षा में आया। सुमेर सिंह ने परीक्षा पूर्व की रात पेपर हल करने की जगह पेपर बेचने का काम किया।

अफसोस सुमेर सिंह असफल रहा तथा पेपर खरीददार सफल हो गए। सुमेरसिंह को नौकरी नहीं लग पाने का मलाल हुआ लेकिन पैसे कमा लेने की खुशी भी हुई। महीने भर बाद जाँच एजेंसियों ने पेपर आऊट मानते हुए रद्द करने की सिफारिश कर दी। दुबारा परीक्षा की तिथि घोषित हो गई।

परिश्रमी परीक्षार्थी अवसाद में डूब गए। कोई फंदे पर लटक गया। किसी ने जहर खा लिया। कोई पागल हो गया। कोई व्यर्थ हो गया। कोई बर्बाद हो गया।

किसी का परिश्रम डूबा। किसी के पैसे डूबे। किसी की प्रतिभा डूबी। किसी की लुटिया डूब गई।

भ्रष्टाचार तैरता रहा। बेईमानी तैरती रही। प्रशासन तैरता रहा। सरकार तैरती रही। ये सब तैरकर तरोताजा हो गए थे।

संतुष्ट युवक असंतुष्ट हो गया। असंतुष्ट युवा अराजक हो गया। उसकी नजर में निष्ठा और विष्टा का भेद मिट गया था।

सुमेरसिंह ने कहा, ''अगली बार मैं अपने बारे में भी सोचूँगा। जो अपने बारे में सोचते हैं, वे मुझसे मिलते रहें। मैं उनके बारे में भी सोचने की कोशिश करूँगा।''

सुमेरसिंह परीक्षा देते-देते परेशान हो गया था। वह ग्रेजुएट होने के बाद प्रत्येक प्रकार की परीक्षा दे चुका था। उसके पास दो ही काम थे प्रतियोगी परीक्षाओं के फार्म भरना और परीक्षा देना। निरन्तर असफलता उसे डिगा नहीं पाई थी। उसके पास इस बार परीक्षा का आखिरी मौका था। यदि समय पर परीक्षा हुई, समय पर परिणाम आया

तो समय पर पोस्टिंग मिल जाएगी। संयोग से समय पर सब काम हुए किन्तु समय पर ही किसी ने मुकदमा ठोंक दिया। भर्ती प्रक्रिया लटक गई। लटकी भी इतनी लम्बी कि सुमेरसिंह कहीं का नहीं रहा। सरकारी नौकरी की प्रतिस्पर्धा से बाहर होने के कगार पर आ गया।

× × ×

रमाशरण के पिताजी नहीं थे। माँ थी। उसी ने आर्थिक तंगी में बी.ए. तक पढ़ा दिया था। छोटे भाई-बहिनों का भार भी था। माँ उठा नहीं पा रही थी। रमाशरण ने बी.ए. करते ही काम तलाशना शुरू किया। कम्प्यूटर उसे आता नहीं था। अब वह ऐसे काम की तलाश में था जिसे आसानी से किया जा सके।

एक डॉक्टर के क्लिनिक पर उसे पर्ची काटने का काम मिला। मरीजों के रजिस्ट्रेशन करता था तथा नम्बर से पर्ची देकर डॉक्टर के पास भेजता था।

थोड़े दिन बाद उसने दूसरे डॉक्टर के क्लिनिक पर ऐसा ही काम किया। वहाँ आने वाले मरीज डॉक्टर को जल्दी दिखाने की सिफारिश उससे किया करते थे। किसी-किसी को वह जल्दी भेज भी देता था। मरीजों से उसका सीधा सम्पर्क होने लगा था। नर्सिंगकर्मी, फार्मेसी वाले भी उसके सम्पर्क में आ गए। एम.आर. डॉक्टर से मिलने के लिए पहले रमाशरण से मिला करते थे। इस तरह रमाशरण का मेडिकल क्षेत्र में अनुभव बढ़ने लगा। मेडिकल स्टोर वालों से उसकी जान-पहचान बढ़ी। दवाओं के बारे में थोड़ा-थोड़ा समझने लगा। घाव पर पट्टी बाँधना, इंजेक्शन लगाना, ड्रिप चढ़ाना, बी.पी. नापना आदि भी उसे आने लग गए। मेहनती वह शुरू से था ही।

मरीज उसे कम्पाउण्डर साहब कहने लगे थे। उसका रूतबा बढ़ने लगा था। वह नर्स व कम्पाउण्डरों की सहायता स्वेच्छा से आगे बढ़कर किया करता था इसलिए सीखने में सहूलियत हो गई। सीख भी जल्दी गया।

वहाँ के एक पुराने कम्पाण्डर ने अपने घर पर दवाखाना खोल रखा था। सुबह-शाम कुछ मरीजों को वह देख लेता था। यहाँ डॉक्टर के बाद वही प्रमुख था। इसलिए डॉक्टर भी उसके भरोसे रहा करता था। कई बार वह डॉक्टर से फोन पर बात करके इमरजेंसी में मरीजों को दवा भी दे देता था।

इस कम्पाउण्डर ने अपना क्लीनिक खोलने की योजना बनाई। यहाँ से बीस किलोमीटर दूर एक गाँव में क्लीनिक खोलने की सारी व्यवस्थाएँ पूरी कर लीं। परेशानी यह थी कि उसे एक विश्वसनीय सहयोगी चाहिए था। उसने रमाशरण को तैयार किया और यहाँ से दुगुना वेतन देने का वादा किया।

रमाशरण की माँ ने कहा, ''यहाँ जो मिल रहा है वो ठीक है। वहाँ दूर जाना पड़ेगा। ज्यादा समय भी लगेगा।''

रमाशरण का जवाब था, ''भले ही दूर जाना पड़े लेकिन रुपये तो दुगुने मिलेंगे। चिकित्सा क्षेत्र में एक साथ दुगुना वेतन कोई नहीं देता। वहाँ मैं कम्पाउण्डर का कार्य करूँगा। थोड़ा स्तर और बढ़ जाएगा।''

छोटे भाई-बहन बोले, ''दूरी कोई मायने नहीं रखती है। रकम तो ज्यादा मिल रही है। हो सकता है साल-दो साल में भैया खुद ही डॉक्टर बन जाए।''

इस बात से रमाशरण के दिमाग में कुछ कौंधा। माँ ने प्रतिवाद किया, ''ऐसे थोड़े ही कोई डॉक्टर बनता है। इसके लिए पाँच साल पढ़ाई करनी पड़ती है। वो भी विज्ञान की पढ़ाई।''

रमाशरण ने कहा, ''अम्मा, तुम कुछ नहीं समझती हो। जैसे ये कम्पाउण्डर डॉक्टर बनकर बैठेगा, वैसे ही मैं भी डॉक्टर बनकर बैठ सकता हूँ। क्या पता ये कम्पाउण्डर भी मेरे जैसा बी.ए. पास ही हो। ये कौन-सा विज्ञान पढ़ा होगा।''

बहिन बोली, ''भैया सही कह रहे हैं। भैया एक दिन डॉक्टर बनकर रहेंगे। मुझे ऐसा लग रहा है।''

कम्पाउण्डर ने तय किया पहले मैं नौकरी छोडूँगा। इसके बाद अगले महीने रमाशरण को नौकरी छोड़नी होगी। इससे डॉक्टर को पता नहीं चलेगा।

महीना पूरा होते ही कम्पाउण्डर ने नौकरी छोड़ दी। डॉक्टर को झटका लगा। अब रमाशरण पर काम का दबाव बढ़ गया। अब उसे कम्पाउण्डर का काम ज्यादा करना पड़ता था। पर्ची बनाने का काम किसी और को दे दिया।

अधिक काम का हवाला देकर अगले महीने रमाशरण ने नौकरी छोड़ दी। डॉक्टर ने वेतन में हजार रुपये बढ़ोतरी का वादा भी किया किन्तु रमाशरण को जाना ही था। चला गया।

नये क्लीनिक में अधिकृत कम्पाउण्डर के पद पर होने से उसका रूतबा बढ़ गया था। यहाँ गुप्तरोग के मरीज आते थे। शुरू-शुरू में रमाशरण गुप्त रोग के बारे में जानता नहीं था लेकिन वह जल्दी ही जान गया।

साल भर काम करते-करते उसके मन में डॉक्टर बनने की इच्छा जागृत हुई और वह बलवती होती चली गई। उसकी बहन की बात उसे याद आयी, 'एक दिन भैया खुद डॉक्टर बन जाएगा।'

उसके जीवन में डॉक्टर बनने का यह सही समय है। सबसे ज्यादा सुरक्षित और कमाई का साधन गुप्त रोगों के इलाज में है। इसमें मरीज अकेला आता है और चोरी छुपे इलाज कराता है। फायदा न भी हो तो किसी से शिकायत भी नहीं करता। यह रोग सबसे सस्ता, सरल, सुन्दर और टिकाऊ है। टिकाऊ इसलिए कि यह रोग होता ही नहीं है तो इसके खत्म होने की गुंजाइश भी नहीं होती है।

न पट्टी बाँधनी, न इंजेक्शन लगाना, न ड्रिप चढ़ानी, न इन्फेक्शन का खतरा और न रिएक्शन की सम्भावना। मूल समस्या एक्शन की होती है।

मरीज चूँ-चपड़ भी नहीं करता। पैसे मुँह माँगे मिलते हैं। तेल, ट्यूब, साबुन, दवा भी खुद ही दो। न कोई झंझट और न कोई टंटा।

रमाशरण की इच्छा साकार रूप लेने लगी थी। दूसरे साल यह क्लीनिक उसने छोड़ दिया तथा झोटवाड़ा कच्ची बस्ती में एक दुकान लेकर क्लीनिक शुरू कर दिया। डॉक्टर बनने का उसका सपना पूरा हुआ।

यहाँ गुप्त रोग के बहाने दूसरे मरीज भी आ जाते थे तो रमाशरण उनका भी इलाज कर देता था। मरीज को वशीभूत करना उसे आता था। उसके व्यवहार से दो महीने में ही 'गुप्त रोग दवाखाना' सबकी नजर में आ गया। सामान्य रोगी भी गुप्त रोगी बनकर उसके पास आने लगे।

'गुप्तरोग दवाखाना' अब 'गारंटेड दवाखाना' बन गया था। कच्ची बस्ती में यह धारणा बैठ गई कि डॉक्टर होशियार है और हरेक रोग का इलाज वह सस्ते में कर देता है। कैसा भी गुप्त रोग हो, उसे जड़ से काट देता है।

रमाशरण का प्रचार बस्ती के लोग ही करने लगे थे। धीरे-धीरे उसके दवाखाने में मरीजों की संख्या बढ़ने लगी थी।

[2]

एक दिन शहर के सिर पर सींग और पुट्ठे पर पूँछ उग आयी। दाँत पैने हो गए और नाखून तीखे हो गए। चेहरा कुरूप और डरावना बन गया। परकोटा के सातों द्वार खुल गये। चौकड़ियाँ छिन्न-भिन्न हो गयीं। नाहरगढ़ से दैत्याकार दहाड़ सुनायी पड़ने लगी।

सन् 1875 में शहर के शरीर पर चढ़ा गुलामी रंग अब बदरंग हो गया था। लगभग दो सौ साल में दीवारों से गुलाबी पर्तें उतर गई थीं और अन्य कई रंग चढ़ने लगे थे।

समकोण पर काटने वाली सड़कें अब हर कोण पर का कटने लगी थीं। चौपड़ को चौपट करके मैट्रो चौपाटी बना दिया था।

विद्याधर भट्टाचार्य, जगन्नाथ सम्राट और मिस्त्री अनंतराम ने शहर को नौ चौकड़ियों में बसाया था। ताकि नवग्रहों के सिद्धान्त पर शहर में नवनिधियाँ बरसती रहें। अष्ट सिद्धियों का वास हो। सप्त ऋषियों के आधार पर सात दरवाजों में शहर को सुरक्षित किया गया था। सड़कों की चौड़ाई 18 गज, 27 गज और 36 गज रखी गई थी। अठारह बीघा की एक चौकड़ी बसायी थी। कुल नौ चौकड़ियों में समाया हुआ शहर था जयपुर। आज चौकड़ियाँ खुद चौकड़ी भूल गयी थीं। चौकड़ियों से घिरा परकोटा कसमसाने लगा। शहर परकोटे से बाहर निकल गया था। इतना बाहर कि परकोटे की पकड़ से दूर हो गया था। आगे चलकर परकोटा भी गायब हो गया था।

अष्ट सिद्धियाँ असंख्य सिद्धियाँ बन गईं। अनेक निजी विश्वविद्यालय सिद्धियों का सर्टिफिकेट और डिग्रियाँ बाँटने लगे। घर बैठे-बैठे डिग्रियाँ मिलने लगीं, शिक्षा में नयी तरह का नवाचार होने लगा।

नव निधियों की जगह अभिनव निधियाँ सामने आ गईं। अनेक कम्पनियों ने क्रेडिट सोसायटी बनाकर जन निधि एकत्र करना शुरू कर दिया। जनता की निधियाँ सोसायटी की सिद्धियाँ बन गईं। नव-नव निवेश निधियाँ बाजार में आने लगीं। जन भ्रमित हो गया।

अधिक ब्याज के लालच में मूल धन डूबने लगा। कम्पनियाँ फलने-फूलने लगीं और एक दिन दिवालिया घोषित हो गईं। जन हाहाकार मचाकर रह गया। कर्ज देने वाले बैंक खुद कर्ज में डूब गये। मोटा कर्ज लेने वाले विदेश भाग गए। छोटे कर्जधारी किसान, मजदूर, नौकर देश में ही फँस गये। कुछ ने इज्जत बचाने के लिए घर-मकान-खेत बेच दिये। जिन्होंने इज्जत बेच दी वे बच गए। जो इज्जत नहीं बेच पाए वे नहीं बचे। असमय चले गए।

बड़ी-बड़ी कम्पनियों ने यहाँ पर पैर पसार लिये थे। बैंगलोर, गुड़गाँव, नोएडा, हैदराबाद जैसा आई.टी. अड्डा विकसित होने लगा।

विदेशी शहरों की तर्ज पर रात में भी शहर काम करने और जागने लगा था। देर रात युवकों की पार्टियों का चलन चल पड़ा था। हुक्का बार और बीयर बार बहुत सामान्य और बेहद आम हो गए थे। नये-नये नशों की नई-नई खेप आने लगी थी। रेव पार्टियों का प्रचलन पनप गया था। शहर के युवा पारिवारिक आयोजनों से कटकर पर्सनल पार्टियों में जाने लगे।

इस शहर में सवारियों को ढोने के लिए ताँगे हटे तो पैडल रिक्शा आ गये। फिर ई-रिक्शा वालों ने जैसे शहर को घेर लिया था। जैसे टिड्डी दल पेड़ों, वनस्पतियों, खेतों पर हमला करके उन्हें चट कर जाता था वैसे ही ई-रिक्शाओं की भरमार ने शहर की यातायात व्यवस्था को चौपट कर दिया था। कदम भर चलना भी दूभर हो गया था। शहर में इनके अलावा सड़कों पर कुछ भी नजर नहीं आता था। ऑटो, टैक्सी सिमट कर रह गए थे। ई-रिक्शाओं ने सुविधा से ज्यादा दुविधा पैदा कर दी थी।

शहर में गुरुओं की संख्या बढ़ने से लगता था देश फिर से विश्व गुरु बन जाएगा। शिक्षा गुरु कभी कक्षाओं में पढ़ाते नहीं थे। विद्यालय से विश्वविद्यालय तक का यही हाल था। धर्म-अध्यात्म गुरुओं के यहाँ अनुयायियों की संख्या लाखों में पहुँच गई थी। वे ही परलोक जाने का सही मार्ग प्रशस्त किया करते थे। लोक से उन्हें कोई सरोकार नहीं होता था। जिसका लोक खराब होता था वही परलोक सुधारने की चिंता करता था। मैनेजमेण्ट गुरु मनुष्यों को जीवन प्रबंधन की बारीकी केवल 'लाइक और कमेन्ट्स' की गुरु दक्षिणा देने पर बताने लगे थे। सफल होने के लिए इनके पास एक से एक फंडे हुआ करते थे। सफलता की गारंटी के साथ ये अपना तर्क प्रस्तुत किया करते थे। कुछ कैरियर गुरु कैरियर बनाने के गुर सिखाकर मालामाल होने लगे। फिर भी अधिकांश का कैरियर चौपट हुआ जा रहा था।

जिनका खुद का कैरियर नहीं बन पाया वे दूसरों का कैरियर बनाने की जिम्मेदारी उठा रहे थे। कैरियर की भी काउन्सलिंग होने लगी थी। सफलता पाने के मंत्र बँटने लगे

तथा ऐसे गुरुओं की बाढ़ आ गई थी। लोग समझ नहीं पाते थे कि इहलोक सुधारें या परलोक सुधारें? लोग खुद सुधर नहीं रहे थे लेकिन लोक को सुधारने निकल पड़े थे।

सफल लोगों की जीवनियाँ, आत्मकथाएँ, किस्से सुना-सुनाकर लोगों को सफलता का सामान बँटने लगा। उनके संघर्ष को विश्व संघर्ष का दर्जा दिया जाने लगा। बढ़ा-चढ़ाकर उनकी दिनचर्या बताकर उसमें से सफलता के बीज निकाले जाने लगे। छोटी-छोटी असफलताएँ बड़ी-बड़ी सफलताओं की जननी होती हैं। यह रहस्य सबको बताया गया।

मैंने स्मार्ट शहर की परिकल्पना कभी नहीं की थी। मैं कूप मंडूक की तरह परकोटे का ही मेंढक था। मुझे नहीं पता था कि दुनिया का परकोटा शहर के परकोटे से भी बड़ा है। परकोटे को ही मैंने संसार की सीमा मान रखा था।

शहर में यूँ तो करने को बहुत कुछ था लेकिन मेरे लिए कुछ न था।

मेरे लिए छोटी चौपड़ ही शहर का केन्द्र बिन्दु था। इधर चाँदपोल, उधर बड़ी चौपड़, इधर अजमेरी गेट, उधर ब्रह्मपुरी। मैं बर्गर सिंह का एक विज्ञापन पढ़ रहा था कि मेरे पास एक मोटर साईकिल रुकी। मैं मोटर साईकिल की तरफ देखे बिना फुटपाथ की ओर सरक गया ताकि वह गंतव्य पर बिना टकराए निकल जाए। मोटर साईकिल फिर मुझसे सटने लगी। मैं फुटपाथ की नाली में गिरते-गिरते बचा। मैंने जोर से कहा, ''बेवकूफ है क्या? साइड में चल रहा हूँ फिर भी घुसाए जा रहा है।'' कहकर मैंने देखा यह प्रभाकर था। वह जोर से हँसा। मुझे भी हँसी आ गई। क्रोध सहजता में बदल गया।

प्रभाकर मेरे बचपन का दोस्त था। स्कूल तक साथ-साथ पढ़े थे। अच्छा गायक था। गायन में हमेशा पुरस्कार जीता करता था। बी.ए. उसने स्वयंपाठी के रूप में किया था। जब कभी दोस्तों की महफिल जुड़ती थी तब उससे गीत जरूर सुने जाते थे। टेबल को वह ढोलक की तरह बजा लेता था। हमारे लिए वह प्रतिभावान हुआ करता था। क्योंकि हमारे बीच अन्य किसी का कंठ खुला हुआ नहीं था। उनके मुँह जरूर खुले हुए थे और गाल बजाना सभी जानते थे।

इस प्रतिभा के कारण प्रभाकर का प्रेम प्रसंग चला जो विवाह में बदल गया था। शेष प्रतिभाहीन साथी अभी तक अविवाहित घूम रहे थे। विवाहित व्यक्ति हमारे बीच विशेष हो गया था। क्योंकि उसके पास हमसे अलग अनुभव होते थे। वह ज्यादा जिम्मेदार भी हो गया था।

प्रभाकर में गायन की प्रतिभा नहीं होती तो न प्रेम होता और न विवाह ही हो पाता। उसके भी कोई दाँत देखने नहीं आता। और आज वह अविवाहितों की तरह विचरण कर रहा होता।

प्रभाकर की पत्नी बैंक में क्लर्क थी। सुबह वह उसे बस स्टॉप पर छोड़ने जाया करता था। शाम को बस स्टॉप से उसे लेकर आता था। उसकी दिनचर्या निश्चित हो गई थी। पत्नी को छोड़ना, लाना, छोड़ना, लाना बस।

विवाह के बाद गाना-बजाना छूट गया था। कभी-कभी भजन मण्डली के साथ भजन गा लिया करता था।

प्रभाकर की पत्नी साठ किलोमीटर दूर नौकरी पर जाती थी फिर शाम को आती थी। घर से बस स्टैण्ड दस किलोमीटर दूर था। प्रभाकर जिस दिन उसे बस स्टैण्ड नहीं छोड़ पाता था उस दिन पत्नी को सुबह साढ़े सात बजे घर से निकलना पड़ता था। शाम को भी साढ़े सात बजे तक ही घर आ पाती थी। अपना खाना खुद बनाकर ले जाती थी। सुबह घर की झाड़ू-बुहारी भी करके जाना पड़ता था। शाम को आते ही रसोई में लगना पड़ता था। थक कर आने के बाद आराम की जगह काम में डूबना उसकी मजबूरी थी। नहीं करे तो सास-बहू की स्थायी तनातनी शुरू हो जाती थी।

प्रभाकर की पत्नी को घर भी सँभालना पड़ता था और नौकरी भी सँभालनी पड़ती थी। आने-जाने की भागदौड़ में समय और शरीर दोनों खर्च हो रहे थे उसके। घरेलू तनाव, नौकरी के दबाव और लम्बे आवागमन के कुप्रभाव उसके चेहरे और चाल-ढाल में साफ देखे जा सकते थे।

प्रभाकर चाहता था बहू होने के नाते उसकी पत्नी को सास-ससुर की सेवा करनी चाहिये। बहू इससे ज्यादा सेवा करने में असमर्थ थी। अपने माता-पिता की सेवा अपनी पत्नी से कराने के कारण वह घर छोड़कर पत्नी के नौकरी स्थल पर रहने नहीं जा पा रहा था। वह भी चला जाएगा तो उसके माँ-बाप की देखभाल कौन करेगा?

वैसे उसके माता-पिता समर्थ थे और अपनी सेवा स्वयं करने के योग्य भी थे। फिर भी बहू से सेवा कराने पर सामाजिक अहम् की संतुष्टि हुआ करती थी। बहू का मतलब सेवा होता है। मर-मरकर सेवा में डटे रहना।

प्रेम करते समय यह सेवा क्षेत्र छिपा हुआ था। लेकिन विवाह के बाद यह गौण से मुख्य कर्म में बदल गया।

मैंने पूछा, ''प्रभाकर विवाह के बाद प्रेम बचा हुआ है या नहीं बचा?''

उसने बताया, ''विवाह के बाद प्रेम दस प्रतिशत रह गया तथा सेवा नब्बे प्रतिशत में पसर गई है।''

मुझे लगा, यह दस प्रतिशत प्रेम का आधार कभी भी खिसक सकता है। जिस दिन पूरा खिसक जाएगा उस दिन गृहस्थी भी खिसक जाएगी। सौ प्रतिशत सेवा के साथ शून्य प्रतिशत प्रेम लेकर कब तक घिसटा जा सकता है?

मैंने कहा, ''प्रभाकर तू प्रेम को बचाकर रखना चाहता है तो सेवा को समाप्त करके देख ले। क्योंकि प्रेम में जितनी सेवा होती है वह जीवन के लिए पर्याप्त हुआ करती है। अतिरिक्त सेवा प्रेम को अपदस्थ कर देती है।''

परन्तु प्रभाकर सेवा और प्रेम के बीच में फँसा हुआ था। प्रभाकर ने मोटर साईकिल स्टार्ट की और घड़ी की ओर देखकर बोला, ''अभी जल्दी में हूँ। फिर मिलता हूँ तब बात करेंगे।'' कहकर वह चला गया।

समाज का परम्परागत ताना-बाना छिन्न-भिन्न होने लगा था। निकट होकर भी दूरियाँ बढ़ गई थीं। सम्बन्धों में स्थायित्व का महत्त्व समाप्त हो गया था। वस्तुओं की तरह सम्बन्ध भी 'यूज एण्ड थ्रो' बनते जा रहे थे।

इलाके में अब तक दो बार क्रांति हुई थी। पहली बार रेलवे फाटक के ऊपर ओवर ब्रिज बना तब। यह लोगों के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि थी। उस समय कईयों के दुकान-मकान टूटे थे। दुबारा फ्लाई ओवर बना तब इलाके में क्रांति की दूसरी खेप आई। एक बार फिर मकान और दुकान टूटकर सड़क चौड़ी हो गई थी।

भविष्य में जब-जब सड़क की चौड़ाई बढ़ेगी, तब-तब किरानों के मकान-दुकान की चौड़ाई घट जाएगी या मिट जाएगी। साठ फीट की सड़क अब दो सौ फीट की सड़क हो गई थी। दूर तक सड़क नजर आने लगी थी। यातायात खुला-खुला चलने लगा था। चौड़ाई बढ़ने से गार्ड साहब का आगे का हिस्सा चला गया था। झा क्लीनिक का पीछे का हिस्सा साफ हो गया था। गुप्ता केयर सेन्टर आगे से साफ होकर अगल-बगल में फैल गया था।

गंगाधर निकेतन गंगाधर टावर बन गया। बाढ़दार भवन बाढ़दार तीन मंजिला मार्केट हो गया। सड़क किनारे के दो पूजा घरों को पीछे खाली स्थान में प्रतिस्थापित कर दिया था। पंखा चौराहा खुले पंखों वाला चौराहा बन गया था।

सड़कीय चौड़ाई में मुख्य बाधा इमली के पुराने पेड़ की थी। इसका क्या किया जाए? क्या यह भी विस्थापित हो जाएगा या प्रतिस्थापित किया जाएगा? निर्णय नहीं हो पा रहा था। पेड़ पुराना था और बहुत बड़ा था। कीटों, पक्षियों और बंदरों की पन्द्रह-बीस पीढ़ियाँ देख चुका था।

स्थानीय लोग पेड़ को बचाने के पक्ष में थे। पेड़ बचेगा तो उसकी सीध में आने वाले पाँच-सात मकान भी बच जाएँगे। ये पाँच-सात लोग पेड़ को बचाने के लिए आंदोलन के

लिए तैयार थे। उनके मन की बात तो यह थी कि पेड़ बचे या न बचे उनके मकान बच जाने चाहिए। विकास प्राधिकरण पेड़ को बचाने की सोच रहा था, साथ ही उसकी सीध में आने वाले मकानों को तोड़ने की भी सोच रहा था। सोच की सीमा समाप्त हुई तो कर्म की सीमा शुरू हो गई थी।

एक दिन विकास प्राधिकरण अपने अधिकारियों, कर्मचारियों एवं तोड़-फोड़ दस्ते के साथ सुबह-सुबह इलाके में पहुँच गया। पहुँचते ही इलाके में अफरा-तफरी मच गई। लोग अपने-अपने मकानों के बाहर विरोध के लिए खड़े हो गए। दस्ता सीधे इमली पेड़ की आड़ में सड़क सीमा में आने वाले मकानों को ध्वस्त करने पहुँच गया था। बुलडोजर और जे.सी.बी. का कार्य शुरू होने वाला ही था कि मकान के मालिकों ने कोर्ट स्टे के कागजात दिखा दिये। दस्ते के अधिकारी हतप्रभ रह गए। एक ही दिन में स्टे मिल गया था। जोश ढ़ीला पड़ गया। बुलडोजर पीछे खिसक आया।

कर्मचारी कहने लगे, ये मकान वाले तो कोर्ट स्टे लाकर आज बच गए। कोर्ट स्टे वेकेन्ट होते ही टूट जाएँगे। अब क्या करें? आज का वर्क टूर कहाँ दिखाएँ?

एक अधिकारी बोला, ''लौट चलते हैं। दूसरी जगह देखते हैं।''

दूसरा अधिकारी बोला, ''तो इस इमली पेड़ को भी हटाना पड़ेगा। इसे जेसीबी से हटवा देते हैं। इस पेड़ पर स्टे तो है नहीं।''

एक कर्मचारी बोला, ''हाँ, हाँ यह ठीक रहेगा। वैसे भी पेड़ को सड़क पर से हटाना ही पड़ेगा। आज पूरी फोर्स है हटा देते हैं।''

कोर्ट स्टे मिलने वाले मकान मालिक दस्ते के लौटने पर प्रसन्न होकर बैठ गए। दस्ता इमली पेड़ के पास आ गया और ऊपर के आदेशों का इन्तजार करने लगा। ऊपर के आदेश मिलते ही दस्ते ने इमली के पेड़ को चारों ओर से घेर लिया। जेसीबी उसकी जड़ों के चारों ओर मिट्टी खोदकर खाई बनाने लगी ताकि पेड़ को एक तरफ किनारे आसानी से गिराया जा सके।

पर्यावरण प्रेमी एवं पर्यावरण संरक्षण की संस्थाएँ पेड़ को बचाने नहीं आईं। आते-जाते लोगों की भीड़ जुट गयी। लोग जेसीबी द्वारा खोदी जा रही मिट्टी के बारे में चर्चा करने लगे। कुछ ठलुआ वहीं मिट्टी के ढेर पर बैठ गए।

इमली पेड़ अपने बचाव में न प्रतिरोध कर सकता था, न प्रतिशोध ले सकता था। न अपनी रिपोर्ट पुलिस थाने में लिखा सकता था और न स्टे लाने के लिए कोर्ट ही जा सकता था। पेड़ तो पेड़ था। बेजुबान!

अगर यह कहानी आपकी लगी....
तो आगे पढ़े बिना रह पाना मुश्किल होगा।

👉 **अभी खरीदें →**